दुनिया के मजदूरों, एक हो!

किस प्रकार की पार्टी

हिन्दोस्तान की कम्युनिस्ट ग़दर पार्टी
नई दिल्ली, दिसंबर, 2016

© लोक आवाज़ पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स

प्रथम संस्करण फरवरी 1994

दूसरा संस्करण दिसंबर 2016

20-00 #i ;

प्रकाशक : हिन्दोस्तान की कम्युनिस्ट ग़दर पार्टी
ई–392, संजय कालोनी, ओखला फेस – 2,
नई दिल्ली 110020, www.cgpi.org

वितरक : लोक आवाज़ पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स
ई–392, संजय कालोनी, ओखला फेस – 2,
नई दिल्ली 110020, फोन नं. : 09868811998
email: lokawaz@gmail.com

प्रकाशक की टिप्पणी

इस दस्तावेज़ **"किस प्रकार की पार्टी"** को, कामरेड लाल सिंह ने हिन्दोस्तान की कम्युनिस्ट ग़दर पार्टी की केन्द्रीय कमेटी की ओर से 29–30 दिसम्बर, 1993 में हुई दूसरी राष्ट्रीय सलाहकार गोष्ठी में पेश किया था। सलाहकार गोष्ठी ने दस्तावेज़ का अनुमोदन किया। इसे केन्द्रीय कमेटी के निर्णय के अनुसार, अप्रैल 1994 में चर्चा के लिये जारी किया गया था।

केंद्रीय कमेटी के निर्णय के अनुसार, अब इस दस्तावेज़ का दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इस संस्करण में दस्तावेज़ की भाषा को और सुधारा गया है।

दिसंबर 2016

प्रस्तावना

हम, इतिहास के एक बहुत खास समय पर खड़े हैं, ऐसा समय जब विश्व के पूंजीपति व प्रतिक्रियावादी लोगों की आजीविका और समाज की प्रगति पर अपना सबसे बड़ा हमला कर रहे हैं।

कम्युनिज़्म के ऊपर बहुत बड़ा हमला हो रहा है और बहुत–सी पार्टियों ने इस विचारधारा, भविष्य की इस झांकी से मुंह मोड़ लिया है, जो कि मजदूर वर्ग के लिये, अपना उद्धार करने के लिये बहुत निर्णायक है। यह क्रान्ति के पीछे हटने का दौर है, ऐसा दौर जब क्रान्ति–विरोधी ताक़तें जोर पर हैं।

हिन्दोस्तान की कम्युनिस्ट ग़दर पार्टी ने इस दूसरी राष्ट्रीय सलाहकार गोष्ठी को अपने इस संघर्ष के तहत आयोजित किया कि प्रगतिशील ताक़तों को बरकरार रखा जाये, उनकी श्रेणियों को बढ़ाया जाये, वह जगह बढ़ायी जाये जहां कम्युनिज़्म के विचार पल सकें, और उस समय की तैयारी की जाये जब मजदूर वर्ग व लोग विश्व पूंजीपतियों के खिलाफ़ अपना हमला चालू करेंगे।

हिन्दोस्तान में सरमायदारों ने लोगों की रोज़ी–रोटी व हक़ों पर एक अभूतपूर्व हमला कर दिया है। वे समाज की प्रगति की राह

में रोड़ा बन गये हैं। लेकिन साथ ही वे एक गंभीर संकट में फंस गये हैं, जो खास तौर पर राजनीतिक दायरे में बहुत तीखा है। यह तो जाहिर ही है कि संकट इसलिये है क्योंकि मजदूर वर्ग व लोग देश की मौजूदा राजनीतिक प्रणाली को मानने से इंकार कर रहे हैं। इस बात को नकारा नहीं जा सकता है कि मौजूदा आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था चल ही नहीं रही है। वह लोगों को कुछ नहीं दे पा रही है, इस व्यवस्था से समाज को कोई फायदा नहीं, इससे केवल इसके अपने निहित अन्तर्विरोध तीखे होते जा रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय तौर पर भी यही हालात हैं।

यह कहना एक और स्वयंसिद्धि होगी कि हिन्दोस्तान के लोगों को जो मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं, जैसे गरीबी, बीमारी, साम्प्रदायिक व अन्य किस्म के झगड़े, हिंसा, दंगे—फसाद, राजकीय आतंकवाद व हर तरह की उलझनें, वे इसलिये हैं क्योंकि उनके पास सत्ता नहीं है। इसलिये यह सबसे महत्वपूर्ण सवाल सामने आता है कि लोगों को कैसे सत्ता में लाया जाये, सशक्त किया जाये। आधुनिक जनतंत्र का यह मुख्य मसला है, और कम्युनिस्टों के सामने, मजदूर वर्ग के सामने, हिन्दोस्तान के लोगों की बदहाली के प्रति वाकई फिक्रमंद लोगों के सामने एक चुनौती है। इस सवाल का जवाब देने के लिये बहुत ज़रूरी है कि **किस प्रकार की पार्टी** विषय का पूरे स्पष्ट तरीके से बयान किया जाये।

जब लोगों को सत्ता में लाने के मसले को उठाया जाता है तो हमारे सामने बहुत से ज्वलंत सवाल आते हैं। एक सवाल तो मौजूदा संसदीय प्रणाली, खास तौर पर राजनीतिक पार्टियों की भूमिका पर है तो एक और सवाल राजनीतिक प्रक्रिया व लोगों को सत्ता में लाने का है। दरअसल ये सवाल जुड़े हुये हैं, और इसी संदर्भ में किस

प्रकार की पार्टी लोगों को सत्ता में लाने के लिये आवश्यक है, यह मसला सबसे ज़रूरी मसले के रूप में उभरा है, जिसके तात्कालिक सैद्धांतिक व व्यवहारिक समाधान की ज़रूरत है।

हिन्दोस्तान की कम्युनिस्ट ग़दर पार्टी ने अपने आपको मजदूर वर्ग की राजनीतिक पार्टी के बतौर संगठित किया है। लेकिन सच्चाई तो यह है कि हिन्दोस्तान के मजदूर वर्ग का अग्रगामी दस्ता बहुत–सी पार्टियों व गुटों में बंटा हुआ है। यही सबसे महत्वपूर्ण आत्मगत कारक है जो क्रांति को रोक रहा है। मजदूर वर्ग की एकता बनाना और उसकी अग्रगामी कम्युनिस्ट पार्टी की एकता पुनर्स्थापित करना इस समय की ज़रूरत है। एकता पर बातचीत को और टाला नहीं जा सकता है क्योंकि ऐसे नाजुक समय पर भी टूटे हुये कम्युनिस्ट आन्दोलन के विभिन्न गुट मजदूर वर्ग को अलग–अलग व परस्पर विरोधी संदेश दे रहे हैं। समय आ गया है कि इन मसलों को वर्ग के सामने खुल्लम–खुल्ला तौर पर बयान किया जाये, और **किस प्रकार की पार्टी** के सवाल का जवाब दिया जाये। जब इस सवाल का बयान किया जायेगा तो वे सभी, जिनके हित में ऐसी पार्टी बनाना है, इकट्ठे हो जायेंगे और जो लोग फूट के रास्ते पर अड़े रहते हैं, वे अलग पड़ जायेंगे।

इसी वजह से हमारी पार्टी का मूल्यांकन है कि इस गोष्ठी से शुरू किया हुआ कार्य इस समय का बेहद महत्वपूर्ण कार्य है।

कोई पार्टी घिसे–पिटे कार्यक्रम व दांवपेचों के आधार पर नहीं चल सकती है। आज के कम्युनिस्टों में इतना लचीलापन होना होगा कि वे समाज व आंदोलन की मौजूदा समस्याओं से निपट सकें, जैसा कि पहले के दौर में कम्युनिस्टों ने किया था।

किस प्रकार की पार्टी के सवाल पर बयान करते हुये, हिन्दोस्तान की कम्युनिस्ट ग़दर पार्टी मजदूर वर्ग आन्दोलन को मजबूत करने के मुख्य ज़रिये बतौर, कम्युनिस्ट एकता की पुनर्स्थापना के लिये काम करेगी और साथ ही, लोगों को सत्ता में लाने के लिये सभी राजनीतिक ताक़तों के साथ एकता स्थापित करेगी।

किस प्रकार की पार्टी

आधुनिक हिन्दोस्तान में राजनीतिक व्यवस्था

हिन्दोस्तान की राजनीतिक पार्टियां

हिन्दोस्तानी समाज वर्गों के आधार पर विभाजित है, जहां अधिकांश लोगों का बेहद शोषण होता है।

यह तो बहुत स्पष्ट है कि किसी भी वर्ग को अपने वर्ग हित पूरा करने के लिये अपने आप को एक राजनीतिक पार्टी में संगठित करने की ज़रूरत है। आज़ादी से पहले हिन्दोस्तान में विभिन्न वर्ग थे और उन्होंने अपने आप को अपनी राजनीतिक पार्टियों में संगठित किया। यह कहा जा सकता है कि इन पार्टियों की विशेषतायें, सार व रूप में, बस्तीवादी दौर की हालतों से प्रभावित थीं। हालांकि इन पार्टियों ने राष्ट्रीय संघर्ष का मकसद उठाया था, फिर भी उनका एक खास वर्ग चरित्र था, जिससे बस्तीवाद विरोधी संघर्ष की उनकी धारणा व तरीके प्रभावित हुये थे।

इन पार्टियों का नेतृत्व या तो सरमायदारी था या श्रमजीवी था, लेकिन कहा जा सकता है कि 1947 से पहले, बस्तीवाद विरोधी संघर्ष की वजह से, लोग राष्ट्र की आज़ादी की खातिर इन पार्टियों के सदस्य बनते थे। इस तरह इंडियन नैशनल कांग्रेस (आई.एन.सी.) अपने सदस्यों की संख्या और वर्ग विशेषता के बावजूद, मूल तौर पर, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय पूंजीपतियों की पार्टी थी, जबकि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) एक श्रमजीवी पार्टी थी।

बस्तीवाद विरोधी संघर्ष के दौरान पूंजीपतियों का दो खेमों में बंटवारा हुआ, मुख्य खेमे ने बर्तानवी बस्तीवाद व विश्व साम्राज्यवाद के साथ समझौता किया जबकि दूसरे खेमे का साम्राज्यवाद से टकराव था। ऐसा विभाजन आज भी है, लेकिन उतना तीखा नहीं जितना उस दौर में था।

राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर आजकल विभिन्न पूंजीवादी पार्टियां मौजूद हैं।

पूंजीपति अपने वर्ग स्वरूप के अनुसार, ऐसी राजनीतिक पार्टियों में बंटे होते हैं, जिनमें बहुत आपसी होड़ व शत्रुता होती है। कांग्रेस (इ) व भारतीय जनता पार्टी ऐसी पार्टियों की मिसालें हैं, जहां दोनों पार्टियां पूंजीवादी हैं और फिर भी जबरदस्त आपसी टक्कर में हैं। ऐसी बहुत–सी और भी मिसालें हैं।

निम्न पूंजीपतियों के पास ऐसी पार्टियां नहीं हैं जो खास उनके हितों की सेवा करें। निम्न पूंजीपतियों के अपने कोई ऐसे विशिष्ट हित नहीं हैं, जिन्हें वे या तो समाजवाद की तरफ या फिर पूंजीवाद की तरफ गये बिना, अलग से पूरा कर सकते हैं। वर्तमान हालातों में ये दो व्यवस्थाएं – पूंजीवाद या समाजवाद – ही मुमकिन हैं।

इस तरह निम्न पूंजीपति मजदूर वर्ग की पार्टियों व पूंजीपति वर्ग की पार्टियों के बीच डोलते रहते हैं। कभी वे पूंजीवाद की तरफ आकर्षित होते हैं तो कभी समाजवाद की तरफ और कभी एक मिश्रित व्यवस्था की छवि की तरफ जिसका असल में कोई वजूद नहीं होता है। इस श्रेणी की कई पार्टियां हैं, लेकिन वस्तुगत तौर पर उन्हें या तो पूंजीपतियों के साथ आना पड़ता है या फिर मजदूर वर्ग के साथ। हिन्दोस्तान में समय–समय पर इस तरह की कई पार्टियां

बनी हैं और विलीन भी हो गयी हैं (जैसे कि सोशलिस्ट पार्टी, जनता दल, लोक दल, आदि)। दूसरी तरफ मजदूर वर्ग, अपने वर्ग स्वरूप की वजह से ही समाजवाद की तरफ आकर्षित होता है, और उसकी विशेषता है उसके वर्ग मकसद की एकात्मकता, मानव द्वारा मानव के हर तरह के शोषण को खत्म करना। इस मकसद को पूरा करने के लिये ज़रूरी है कि वह अपने आप को एक खास एकात्मक राजनीतिक ताक़त में तब्दील करे, जिसका अग्रवर्ती हिस्सा वर्ग का नेतृत्व करे और वर्ग का आम हिस्सा दूसरे दलितों व मेहनतकशों के साथ एक संयुक्त मोर्चे में घनिष्टता से जुड़ा हो।

लेकिन अगर हम देश की मौजूदा हालतों को देखें तो मजदूर वर्ग का अग्रवर्ती हिस्सा भी विभिन्न रुझानों में बंटा हुआ है और संयुक्त मोर्चा भी। कुछ रुझान तो खुल्लम–खुल्ला पूंजीपति रुझान हैं। पूंजीपतियों का मजदूर वर्ग पर जबरदस्त असर है, और यह देखने में आता है कि पूंजीपतियों ने हर तरह से मजदूर वर्ग आन्दोलन को नेस्तनाबूद कर दिया है, उसको अपनी स्वतंत्र कर्मशीलता से वंचित कर दिया है, और पूंजीपति कोशिश कर रहे हैं कि मजदूर वर्ग को सरमायदारी हुकूमत के महत्वपूर्ण समर्थक ताक़त में बदल दिया जाये।

इंडियन नेशनल कांग्रेस द्वारा 1955 में अवडी अधिवेशन में समाजवाद का नेहरूवादी नमूना अपनाना, भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन, भूमि सुधार पर कदम, इत्यादि ये सब बड़े पूंजीपतियों के उस बड़े अभियान के हिस्से थे जिसका मकसद था मध्यम व निम्न पूंजीपतियों को श्रमजीवी वर्ग की तरफ से अपनी तरफ खींच लाकर अपने आधार और राज्य सत्ता को मजबूत करना। उनकी यह कोशिश थी कि 'समाजवादी नमूने के समाज' के बारे में अधिकतम भ्रम फैलाया जाये और इस तरह मजदूर वर्ग की आज़ाद भूमिका को

खत्म किया जाये। संसदीय प्रणाली के बारे में भी भ्रम फैलाया गया, जिसे जनतंत्र का सबसे उच्च स्तरीय रूप बताया गया, जिसके ज़रिये लोग अपनी इच्छा के अनुसार समाज में कोई भी परिवर्तन ला सकते हैं। समाजवाद व जनतंत्र के बारे में इन भ्रमों से संपूर्ण आज़ादी व गहन सामाजिक तब्दीलियों के लिए आन्दोलन में तबाही मचा दी गयी। इस दौरान कृषि क्रांति को बलपूर्वक कुचला गया और हिन्दोस्तानी किसानों की ज़मीन की चिरकालीन चाहत असंतुष्ट रह गई।

यह वही समय था जब भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी मजदूर वर्ग को संगठित करके, इन भ्रमों से बचाने में नाकामयाब रही।

वह मजदूर वर्ग को अपना खास कार्यक्रम नहीं दे पायी, जनतांत्रिक क्रांति व कृषि मसले को सुलझाने के संदर्भ में, और समाजवाद, श्रमजीवी वर्ग की राजनीतिक सत्ता हासिल करने के संदर्भ में भी। 1947 में देश की औपचारिक आज़ादी के बाद देश में बड़े परिवर्तन हो रहे थे। बेशक वे इतने बड़े परिवर्तन नहीं थे जितने मजदूर वर्ग या पूंजीपतियों से समझौता न करने वाले खंड के नेतृत्व में, राष्ट्रीय आंदोलन हासिल कर पाता। लेकिन फिर भी ये ऐसी जगह बना रहे थे जिसमें कम्युनिज्म का सिद्धांत व उस पर आधारित राजनीतिक पार्टी आगे बढ़ सकती थी। 1950 में हिन्दोस्तानी संविधान का अपनाया जाना वस्तुगत तौर पर एक प्रगति का कदम था। जनतांत्रिक संस्थाओं का स्थापित किया जाना भी एक अग्रगामी कदम था हालांकि इन संस्थाओं में त्रुटियां थीं।

साथ ही इन तब्दीलियों को अंतिम नहीं समझा जा सकता था क्योंकि ये बहुत गहरी नहीं थीं। इन हालातों में इन परिवर्तनों का एक सचेत मूल्यांकन न करना उतना ही खतरनाक था जितना इन

संस्थाओं के बारे में भ्रम पालना। भाकपा इन दो रुख़ों के बीच डोलती रही, और आज़ादी के बाद के हालातों का फायदा नहीं उठा पायी, वह समाजवाद की तरफ अग्रसर जनतांत्रिक क्रांति का कोई ठोस कार्यक्रम लोगों के सामने नहीं रख पायी। सरमायदारी समाजवाद और संसदीय जनतंत्र के बारे में वह अपने बीच में से भ्रम नहीं मिटा पायी, और इस तरह उसने फूट व बंटवारे के हालातों को पनपने दिया। 1964 के अंत में भाकपा का विभिन्न गुटों में बंट जाना मजदूर वर्ग की स्वतंत्र भूमिका व उसके अग्रवर्ती हिस्से की एकता को सबसे बड़ी चोट थी। आगामी दौर में होने वाली मजदूर वर्ग की विफलताओं का यह संकेत था, और इस तब्दीली का भी, जिसके ज़रिये कम्युनिस्ट पार्टी ऐसे गुटों में बंट गयी जो अलग–अलग राजनीतिक पार्टियों में संगठित हो गये, जिनका मुख्य मकसद था सिर्फ पूंजीवादी राजनीतिक पार्टियों के साथ होड़ लगाना, एक ऐसे मुकाबले में जिसमें मजदूर वर्ग व लोगों के आगे बढ़ने की गुंजाइश ही नहीं थी।

कम्युनिस्ट आन्दोलन का संसदीय जनतंत्र के साथ जो तजुर्बा रहा, उसे देखते हुये, और संसदीय व्यवस्था में जी जान से भाग लेने वाली कम्युनिस्ट पार्टियों को देखते हुये यही नतीजा निकलता है कि इन कम्युनिस्ट पार्टियों ने हिन्दोस्तानी संविधान में घोषित राजनीतिक सत्ता की अवधारणाओं को पूरी तरह मान लिया है, जिसमें लोगों के सत्ता में आने की संभावना की कोई गुंजाइश नहीं है।

कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख गुट, खास तौर पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी व भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) (माकपा) राजनीतिक सत्ता के सवाल को जिस तरह देखते हैं, वह पूंजीवादी राजनीतिक पार्टियों के नज़रिये से कोई ज्यादा अलग नहीं है। वह नज़रिया है

अपने लिये सत्ता हासिल करने का। उनके लिये संसदीय संघर्ष, लोगों को सत्ता में लाने के वर्ग संघर्ष का एक मोर्चा नहीं है बल्कि एक तरीका है जिसके ज़रिये वे मौजूदा व्यवस्था में अपने असर को कायम रख सकते हैं, बढ़ा सकते हैं। 1960 व 70 के दशक में शहरों व देहातों में स्वचलित जन संघर्षों का दौर आया, लेकिन ऐसे हालातों में जहां कम्युनिस्ट पार्टी गुटों में विभाजित हो चुकी थी और उसके मुख्य गुट सरमायदारी समाजवाद व संसदीय जनतंत्र के भ्रमों में फंस गये थे। मजदूर वर्ग व मेहनतकशों के संघर्षों को विजय का सेहरा नहीं मिला। वे अपने हक़ों की हिफ़ाजत करने और समाज की तरक्की का रास्ता खोलने में कामयाब नहीं हो पाये। मार्क्सवादी–लेनिनवादियों ने इस स्थिति को लोगों के पक्ष में तब्दील करने की कोशिश की। किस प्रकार की पार्टी के सवाल को उठाना उसी संघर्ष की कड़ी है। यह कदम मजदूर वर्ग की एकता, उसकी स्वतंत्र भूमिका और सभी मेहनतकश लोगों के साथ उसकी एकता, को समर्पित है। इस सवाल की गहराई में हिन्दोस्तानी कम्युनिस्टों की एकता को पुनर्स्थापित करने का मसला है, जिसके बिना मजदूर वर्ग की एकता व मेहनतकशों के साथ उनका संयुक्त मोर्चा सिर्फ एक दूर का सपना रहेगा।

राजनीतिक प्रक्रिया के नवनिर्माण की ज़रूरत

संसदीय व्यवस्था एक गहरे संकट में है, सिर्फ हिन्दोस्तान में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में। सत्ताधारी पार्टी, कांग्रेस (इ) और विपक्ष की पार्टी भाजपा खुलेआम ऐलान करती हैं कि वे किसी नियम को नहीं मानतीं, वे खुद में एक कानून हैं। ऐसी दूसरी राजनीतिक पार्टियां भी हैं, जो इसी तरह सोचती हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो फिर ये दंगे फसाद, कत्ल, फरेबी मुठभेड़ व लापता होने की घटनायें कैसे होतीं? मौजूदा व्यवस्था में तो एक पार्टी से दूसरी पार्टी को

सत्ता हस्तांतरण भी अनायास नहीं हो पाता है, लोगों की समस्याएं सुलझाना तो दूर की बात है। इसकी मुख्य वजह यह नहीं है कि कांग्रेस (इ) व भाजपा पथभ्रष्ट हैं बल्कि यह व्यवस्था ही अपने आपको बरकरार रखने के लिये ऐसी पार्टियों की ज़रूरत पैदा करती है व उनको आगे लाती है।

लोग अपनी मांगों को बढ़ा रहे हैं, लोगों के सभी खंड इस स्थिति से असंतुष्ट हैं लेकिन यह व्यवस्था उनकी संतुष्टि नहीं कर सकती है। एक नयी किस्म की पार्टी की ज़रूरत उभर रही है, ऐसी पार्टी जो सुनिश्चित करेगी कि ये राजनीतिक पार्टियां लोगों को सत्ता से वंचित न रख पायें।

लोगों को इस संसदीय व्यवस्था का बहुत तजुर्बा है, जहां कोई भी संघर्ष हो, रोज़ी–रोटी का, पर्यावरण की हिफाज़त का, संसाधनों पर नियंत्रण का इत्यादि, कहीं भी संघर्ष हो, कश्मीर, पंजाब, असम, आंध्र प्रदेश, मणिपुर इत्यादि में, उस संघर्ष को **उग्रवादी** और **आतंकवादी** करार दिया जाता है। राजनीतिक व आर्थिक समस्याओं को जानबूझकर **कानून व व्यवस्था** का मसला बना दिया जाता है।

इससे एक तरफ तो बल प्रयोग व राजकीय आतंकवाद बहुत बढ़ा है तो दूसरी तरफ नई दिल्ली की हुकूमत की वैधता पर सवाल बढ़ते जा रहे हैं। इन संघर्षों से शासक वर्गों में भी बंटवारा हो रहा है, और उनके अलग–अलग गुट अपने फायदों के लिये, इन हालातों को इस्तेमाल करते हैं। इन बंटवारों से श्रमजीवी वर्ग को आगे बढ़ने में अनुकूल हालात मिलते हैं, लेकिन ऐसी अनुकूल स्थिति का एक ऐसी ही पार्टी फायदा उठा सकती है जो लोगों को सत्ता में लाने का मकसद रखती है।

हिन्दोस्तान के हालिया चुनावी नतीजे, खास तौर पर उत्तर प्रदेश के नतीजे, जहां लोगों ने कांग्रेस (इ) व भाजपा दोनों को ठुकरा दिया है और किसी भी पार्टी को बहुमत नहीं दिया, यह दिखाता है कि लोग मौजूदा राजनीतिक पार्टियों व नेताओं से एक हद तक ऊब गये हैं। व्यवस्था का इस तरह से ठुकराया जाना सिर्फ हिन्दोस्तान में ही नहीं हो रहा है, बल्कि कनाडा, न्यूजीलैंड, रूस, पेरू, इटली, जापान इत्यादि में भी देखा गया है। जब पूरब व पश्चिम दोनों जगह में ही राजनीतिक पार्टियां व नेता इतने बदनाम हो रहे हैं, तो सवाल उठता है कि क्या राजनीतिक पार्टी नामक संरचना या राजनेता के पेशे में ही कोई दोष है? ऐसा नहीं है। राजनीतिक पार्टियों का अस्तित्व आधुनिक राजनीतिक जीवन की एक महान उपलब्धि है, खास तौर पर कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना। राजनीतिक पार्टियां तभी खत्म होंगी जब वर्ग समाज खत्म होगा।

अगर समस्या राजनीतिक पार्टियों में नहीं तो फिर समस्या कहां है? यह भी कहा जा सकता है कि जिस स्तर की पार्टियां व नेता पैदा होंगे, वह राजनीतिक प्रक्रिया से ही निर्धारित होगा। बेशक अगर वह राजनीतिक पार्टी जानबूझकर व्यवस्था को बदलने के लिये संगठित कर रही है, तो उसके बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। हिन्दोस्तान में किस तरह की राजनीतिक प्रक्रिया है जहां कुछ सांसदों को पैसे देकर सरकार को गिराया या बचाया जा सकता है, जहां चुनावों का इस्तेमाल सिर्फ मौजूदा पूंजीवादी शासन को वैधता प्रदान करने व शासक गुटों की लड़ाइयों को निबटाने के लिये किया जाता है? अगर लोगों को पार्टियों व नेताओं से नफ़रत है तो उन्हें ऐसी राजनीतिक प्रक्रिया से ज्यादा नफ़रत है जो ऐसी पार्टियों व नेताओं को उभारती है। इसका मतलब है कि इन हालातों में एक राजनीतिक पार्टी को ऐसी राजनीतिक प्रक्रिया से अपने आपको दूर रखने के बारे में बहुत सचेत रहना होगा। ऐसी राजनीतिक प्रक्रिया

में डूबना तो दूर, कम्युनिस्ट पार्टी को मजदूर वर्ग को आगाह करना होगा कि वह इस व्यवस्था से भ्रमित न हो और एक नयी व्यवस्था बनाने की ज़रूरत के बारे में सचेत करना होगा, जो लोगों को सत्ता में ला सके। कम्युनिस्ट पार्टी को श्रमजीवी वर्ग को सरमायदारों से टक्कर के मैदान में उतारना होगा, एक सच्चे जनतांत्रिक समाज के सृजन के मसले पर साबित करना होगा कि सिर्फ श्रमजीवी वर्ग में ही इसके लिये काबिलियत व दिलचस्पी है।

हिन्दोस्तान में जो राजनीतिक व्यवस्था है उसकी उत्पत्ति और उसके संकट की जड़ों को हम खोजें तो इसमें मुख्य मीलपत्थर है 1935 का गवर्मेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1947 का सत्ता हस्तांतरण और 1950 में अपनाया गया संविधान।

इंडिया इंडिपेंडेंस एक्ट के बर्तानवी संसद द्वारा पारित होने के बाद, 15 अगस्त, 1947 को जो सत्ता का हस्तांतरण हुआ, उसने संप्रभुता को बर्तानवी ताज व संसद से संविधान सभा में हस्तांतरित किया। बर्तानवी व देशी निहित स्वार्थों द्वारा बहुत से रोड़े लगाने के बावजूद 1935 में राष्ट्रीय आन्दोलन एक चौथाई से ज्यादा आबादी के लिये मताधिकार जीत पाया, जो इसके पहले के बस्तीवादी शासन की हालातों की अपेक्षा एक आगे का कदम था। हालांकि यह सबके लिये मताधिकार से कम था और जायदाद की मिलकियत व शिक्षा स्तर पर आधारित था। 1946 की संविधान सभा को हिन्दोस्तान के आज़ाद व संप्रभुता सम्पन्न लोगों ने नहीं चुना था क्योंकि उस समय बस्तीवादी हुकूमत चल रही थी, बल्कि बर्तानवी हिन्दोस्तान की राज्य विधानसभाओं व वाइसराय की परिषदों के सदस्यों ने चुना था। राज्य विधानसभाओं को भी 1935 के सीमित मताधिकार पर चुना गया था। इसके अलावा, इसमें कुछ रियासतों के नुमाइंदे भी थे। इन परिषदों व विधानसभाओं को संविधान सभा को चुनने

का जनादेश हिन्दोस्तानी लोगों ने नहीं दिया था बल्कि उस समय की संप्रभुता सम्पन्न ताक़त, बर्तानवी संसद ने 1946 में सर स्टैफर्ड क्रिप्स के कैबिनेट मिशन प्लान के तहत दिया था। संविधान सभा में चुने गये अधिकांश लोग पूंजीपतियों के साथ समझौता करने वाले खंड से थे।

हालांकि राज्य विधानसभाओं के सदस्य, जो खुद 1945 में बर्तानवी हुकूमत की हिफाज़त करने की कसम खाने के आधार पर चुने गये थे, वही संविधान सभा के सदस्य थे, फिर भी लोगों में आज़ादी के लिये जज़बात इतने बुलंद थे, कि उन्हें सत्ता के सीधे व तात्कालिक हस्तांतरण के लिये कदम उठाने पड़े। जब 26 जनवरी, 1950 को संविधान देश के बुनियादी विधान बतौर लागू हुआ, तब तक हिन्दोस्तान के लोग दूसरी चीजों के अलावा सर्वव्यापी मताधिकार हासिल कर चुके थे जो उनके लिये एक रणनैतिक महत्व की उपलब्धि थी। उन्होंने पूंजीपतियों को बाध्य भी किया था कि वे ऐसे जनतंत्र को स्थापित करें जिसका घोषित मकसद था हिन्दोस्तानी लोगों के हित में काम करना। हालांकि जो जनतंत्र स्थापित हुआ, वह हिन्दोस्तानी लोगों के लिये वस्तुगत तौर पर एक आगे बढ़ने का कदम था, फिर भी इससे लोग सत्ता में नहीं आ पाये। उसकी वजह थी कि यह जनतंत्र इस सिद्धांत पर आधारित था कि सत्ता को हुकूमत के कार्यकारी दल के हाथों में संकेंद्रित किया जाये ताकि आम लोगों को सत्ता से वंचित रखा जा सके। हिन्दोस्तान के राष्ट्रपति की कार्यभूमिका, मंत्रिमंडल की सलाह पर बार–बार राष्ट्रपति शासन थोपा जाना, राज्यों की सीमाओं में फेरबदल करने का शासक पार्टी का अधिकार, **मंत्रिमंडल के शासन** की ही धारणा, ये सभी बातें हुकूमत के हाथों में सत्ता के केन्द्रित होने के लक्षण हैं।

हिन्दोस्तान के संविधान ने उस समय के सबसे अग्रगामी संविधानिक विधिशास्त्र का पूरा फायदा नहीं उठाया, और न ही उसके ज्ञान पर आधारित होकर उसमें कोई योगदान किया। बल्कि यह संविधान पूंजीपतियों के साथ समझौता करने वाले उस खंड के हितों पर आधारित था जिनके हाथों में 1947 में सत्ता सौंप दी गयी थी। 1950 के बाद के लगभग 45 सालों का तजुर्बा दिखाता है कि पूंजीपति लोगों को जनतंत्र देने में कितना हिचकिचाते हैं। अब लोग और ज्यादा मांग कर रहे हैं कि 1950 के अग्रिम कदमों को अपनी तर्कसंगत मंजिल – लोगों की सत्ता – तक लाया जाये।

राजनीतिक पार्टियां और राजनीतिक सत्ता

एक राजनीतिक पार्टी, अपने राजनीतिक वजूद के कारण ऐसी पार्टी होगी जिसे मानना होगा कि आखिरकार समाज वर्गों में बंटा है, और इस तरह एक राजनीतिक पार्टी को या तो पूंजीपति वर्ग या मजदूर वर्ग की सेवा करनी होगी। कोई ऐसा राजनीतिक संगठन नहीं हो सकता है जो निष्पक्ष या मध्यस्थ होने का दावा करे। एक राजनीतिक पार्टी को राजनीतिक तौर पर वचनबद्ध होना होगा कि सभी राजनीतिक समस्याओं का वह समाधान करेगी, जिसमें प्रमुख है, राजनीतिक सत्ता का सवाल। राजनीतिक सत्ता किसके हाथ में हो? क्या वह राजनीतिक पार्टी के हाथ में हो या एक वर्ग या कई वर्गों के हाथों में हो? क्या राजनीतिक सत्ता समाज के अल्पसंख्यक वर्ग के हाथ में होनी चाहिये? यह कैसा जनतंत्र है जहां एक अल्पसंख्यक वर्ग सारी आर्थिक व राजनीतिक सत्ता को चलाता है? उन बाकी वर्गों व श्रेणियों का क्या दर्जा होगा, जो अल्पसंख्यक पूंजीपति वर्ग और बहुसंख्यक मजदूर वर्ग और शहर व देहात के मेहनतकशों के बीच में हैं? एक या दूसरे वर्ग की पार्टी होने के

आधार पर सभी पार्टियां अवश्य ही किसी वर्ग के शासन के लिये संघर्ष करती हैं। सच्चे माइने में ऐसा नहीं होता है कि कोई पार्टी सिर्फ अपना शासन स्थापित करने के लिये संघर्ष कर रही है। हालांकि सतही तौर पर ऐसा लगता है कि कोई पार्टी सिर्फ खुद सत्ता में आने में दिलचस्प है, पर दरअसल तो उस पार्टी के ज़रिये एक या दूसरा वर्ग सत्ता में आयेगा। यह मौजूदा राजनीतिक सत्ता के स्वरूप में निहित है।

हिन्दोस्तान या अन्य जगहों में जहां संसदीय प्रणाली है, या अमरीका, येल्तसिन के रूस या अन्य जगहों में जहां राष्ट्रपति शासन प्रणाली है, वहां सिर्फ ऐसी ही पार्टियों को मान्यता दी जाती है जो लोगों को सत्ता से बाहर रखने का प्रयास करती हैं। मिसाल के तौर पर राष्ट्रपति को हक है (कैबिनेट की सलाह पर) कि वह किसी भी चुनी हुयी सरकार को बरखास्त कर सकता है। यह प्रावधान सिर्फ इसलिये है ताकि अगर कोई क्रांतिकारी कम्युनिस्ट पार्टी चुनाव जीत जाये तो उसे सत्ता से बेदखल किया जा सके। यह अगस्त 1959 में वाकई हुआ था जब केरल में भाकपा सरकार को खेती में कुछ सुधारों तथा शिक्षा प्रणाली में कुछ बदलाव का प्रस्ताव करने के लिए बरखास्त कर दिया गया था।

दूसरे शब्दों में, सिर्फ उन्हीं पार्टियों को मान्यता दी जाती है जो संसदीय प्रणाली को पूरी तरह से मानती हैं और आर्थिक व्यवस्था की हिफ़ाज़त करती हैं। पूंजीपति वर्ग, जो खुद अपने अलग–अलग खंडों के विभिन्न हितों में बंटा है, तभी तक जनतांत्रिक होने का दम भरता है, जब तक उसकी राजनीतिक सत्ता को कोई खतरा न हो। वह तब तक जनतांत्रिक है जब तक इस व्यवस्था को चलाना मुश्किल न हो जाये, और जब ऐसा होता है तब वह खुला बल

प्रयोग भी करता है। जब से 1947 में हिन्दोस्तानी राज्य पुनर्गठित हुआ है, बस्तीवाद के उपरांत नयी हालतों में वह शुरू से ही खुले रूप से बल प्रयोग करता आया है। राजकीय आतंकवाद को ऐसे हथियार की तरह विकसित किया गया है जिससे यह सुनिश्चित किया जाता है कि सत्ता पूंजीपतियों के हाथ में ही रहेगी। मौजूदा संसदीय प्रणाली हिन्दोस्तान की हालतों के लिये जरा भी अनुकूल नहीं है, यहां तक कि पूंजीपति इसके ज़रिये अपने अन्तर्विरोधों को भी शांतिपूर्ण ढंग से नहीं सुलझा पाते हैं। बहुत सी ऐसी मिसालें हैं जब पूंजीपति वर्ग के अन्तर्विरोध खुली हिंसा में भड़क उठते हैं। 1975 में इंदिरा गांधी द्वारा आपातकाल की घोषणा इसकी एक मिसाल थी और ऐसी ही कई और मिसालें हैं, खास तौर पर ऐसे कानूनों का बनाया जाना जो, पूंजीपतियों के कुछ हिस्सों के नागरिक अधिकार भी छीन लेते हैं, जैसा पंजाब, कश्मीर, मणिपुर इत्यादि में हो रहा है।

सरमायदारी जनतंत्र अपने सार में व दिखावट में भी दरअसल पार्टी का अधिनायकत्व है। यह पूंजीपतियों के सबसे ताक़तवर खंडों का अधिनायकत्व है जिसे सारी राजकीय संस्थाओं, खास तौर पर पुलिस व सेना का समर्थन मिला होता है। यह लोगों के सबसे छोटे खंड का अधिनायकत्व होता है जो ऐसी राजनीतिक पार्टियों के ज़रिये हुकूमत करते हैं, जो उनके हितों की हिफाज़त में हुकूमत करने को राजी होती हैं। यह इसलिये लाजिमी है क्योंकि पूंजीपति तब तक ही जनतांत्रिक है, जब तक उनके अन्दरूनी अन्तर्विरोध शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाये जा सकते हैं। लेकिन इसमें वे हमेशा सफल नहीं होते हैं। जब उदारवादी तरीकों से पूंजीपतियों का हित पूरा नहीं होता है तो वे खुल्लम–खुल्ला डिक्टेटरशिप पर उतर आते हैं।

संसदीय जनतंत्र पूंजीपतियों को अपने अन्तर्विरोध सुलझाने का एक ज़रिया देता है, और यह एक पार्टी को हुकूमत का अधिकार देने के ज़रिये ही होता है। ऐसी पार्टी सत्ता में आने पर अपने गुट को फायदा पहुंचाती है और भ्रष्टाचार के ज़रिये हुकूमत करती है जबकि विपक्ष की पार्टियां उसके खिलाफ़ शोर मचाती हैं ताकि सत्ताधारी पार्टी को बदनाम किया जा सके और वे खुद सत्ता में आ सकें। लेकिन सत्ता में आकर यह पार्टी भी वही काम करती है। 1947 से आज तक का घटनाक्रम यही दिखाता है।

इसके विपरीत, श्रमजीवी पार्टी श्रमजीवी वर्ग की इसलिये होती है क्योंकि वह अपने लिये नहीं बल्कि अपने वर्ग के लिये सत्ता चाहती है, और वह अपना अधिनायकत्व नहीं बल्कि श्रमजीवी वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित करती है।

यह जानी–मानी बात है कि श्रमजीवी पार्टी इस मकसद को हासिल करने के लिये सभी दबे–कुचले वर्गों व श्रेणियों का संयुक्त मोर्चा बनाती है और श्रमजीवी वर्ग को सचेत करती है ताकि वह पूंजीवादी हुकूमत व प्रणाली से सीधे टक्कर ले सके। श्रमजीवी पार्टी न तो वर्ग की जगह ले सकती है और न ही दबे–कुचले वर्गों के संयुक्त मोर्चे की। उसको तो मुख्य आत्मगत ताक़त बनना होगा, बने रहना होगा, जो सरमायदारी के तख्तापलट व समाजवाद की स्थापना के वर्ग मकसद को पूरा करने के लिये एक निर्णायक ताक़त होगी। जब एक कम्युनिस्ट पार्टी संसदीय खेल खेलने लगती है तो इसका मतलब होता है कि वह श्रमजीवी पार्टी नहीं रही, उसने अपना वर्ग स्वरूप खो दिया है। उसकी कुछ प्रगतिशील नीतियां हो सकती हैं। लेकिन उन नीतियों का, कम्युनिस्ट पार्टी की बुनियादी विशेषता, कि उसका खास वर्ग चरित्र होना चाहिये, कि उसे श्रमजीवी वर्ग का अगुवा होना चाहिये, इनसे कोई संबंध नहीं है।

वर्ग चरित्र खो देने पर ये पार्टियां जनतांत्रिक शासन के खिलाफ़ के विचारों के शिकार बन जाती हैं, और श्रमजीवी अधिनायकत्व की जगह पार्टी के अधिनायकत्व की वकालत करने लगती हैं। वे पार्टी की उस अगुआ भूमिका को खत्म करने लगती हैं, जिसके तहत वर्ग का अग्रवर्ती हिस्सा मजदूर वर्ग व लोगों को अपने हितानुसार वर्ग सत्ता चलाने के लिये संगठित करता है। वे भ्रम पैदा करने लगती हैं कि सरमायदारों की बनी बनाई राज्य सत्ता को वर्ग व समाज के हित में गहरी तब्दिलियों को लाने के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है। वे क्रांति को एक भविष्य का मसला मानने लगती हैं जबकि संसदीय संघर्ष को समय का सबसे महत्वपूर्ण मसला बना दिया जाता है। वे श्रमजीवी पार्टी होने का दिखावा भी छोड़ने लगती हैं और उसकी वर्ग रचना को भी बदल देती हैं। सारांश में, वे श्रमजीवी वर्ग की राजनीतिक पार्टी को सरमायदारी राजनीतिक पार्टी में तब्दील करने लगती हैं। इस तरह, यह नतीजा निकाला जा सकता है कि अगर कोई राजनीतिक पार्टी खुद सत्ता हासिल करने पर डटी हुयी है तो वह ज़रूर एक पूंजीवादी पार्टी है।

क्या कोई राजनीतिक पार्टी खुद सत्ता में आने की कोशिश कर रही है या नहीं, इसी आधार पर, उस पार्टी को पहचाना जा सकता है, उसके स्वरूप को स्थापित किया जा सकता है। इस सब के बाद अब यह सवाल भी उठता है कि मजदूर वर्ग को इस दौर में किस तरह की राजनीतिक पार्टी की ज़रूरत है। यह सवाल वाजिब है और इसका जवाब देना चाहिये। किसके मनोभाव के अनुसार ऐसी पार्टी संगठित हो – क्या यह सरमायदारों के मनोभाव के अनुसार एक सैन्यवादी पार्टी हो, जो जबरदस्ती से सत्ता हथियाना चाहती है, या ऐसी पार्टी जो दबे–कुचले लोगों को उस नये समाज के सृजन के लिये संगठित व संचालित करती है, जिसमें सत्ता लोगों के हाथ

में हो, और जिसकी हिफ़ाज़त भी लोग खुद हथियार उठाकर करें। यह एक अत्यावश्यक सवाल बन गया है, जिसका उत्तर हमें सिर्फ अपने बीच ही नहीं बल्कि सभी कम्युनिस्टों व प्रगतिशील लोगों के बीच में तय करना होगा।

राजनीतिक सिद्धांत और राजनीतिक प्रक्रिया

इससे पहले कि एक नयी राजनीतिक प्रक्रिया या नयी राजनीतिक पार्टी के मसले को गंभीरता से देखा जाये, इस बात को अच्छे से समझना बहुत ज़रूरी है, कि हर राजनीतिक प्रक्रिया के पीछे एक राजनीतिक सिद्धांत होता है।

किसी नयी राजनीतिक प्रक्रिया का भी अपना राजनीतिक सिद्धांत होना होगा।

यह कोई आकस्मिक बात नहीं है कि हिन्दोस्तानी सरमायदार राजनीतिक सिद्धांत के मसले पर बहस से दूर भागते हैं। वे ऐसा दिखाते हैं कि यह राजनीतिक व्यवस्था हर समय के लिये सबसे उपयुक्त है, सब लोगों के लिये, या कम से कम अधिकांश लोगों के लिये सबसे उपयुक्त है। वे इस बात को छुपाते हैं कि उनके राजनीतिक सिद्धांत के अनुसार लोगों को राजनीतिक सत्ता से वंचित रखना ज़रूरी है। इसके विपरीत, हमारी पार्टी खुलेआम ऐलान करती है कि वह ऐसे राजनीतिक सिद्धांत व प्रक्रिया के पक्ष में है, जो लोगों को सत्ता में लायेगी।

हिन्दोस्तान की कम्युनिस्ट ग़दर पार्टी राजनीतिक प्रक्रिया व पार्टी के स्वरूप पर बहस के मौके का स्वागत करती है और उनके आधार में क्या राजनीतिक सिद्धांत होगा, इस बहस का भी स्वागत करती है। कम्युनिस्टों को न केवल इस बहस को चलाना होगा बल्कि प्रगतिशील बुद्धिजीवियों को भी प्रेरित करना होगा कि वे इस मसले

पर सरमायदारों से टक्कर लें और हिन्दोस्तान के लोगों को सत्ता में लाने के लिये सबसे उपयुक्त राजनीतिक सिद्धांत को स्थापित करें।

परिभाषा से ही राजनीतिक सिद्धांत का विषय क्षेत्र है राजनीतिक सत्ता, उसकी उत्पत्ति, विकास और अंत में उसका विलीन होना। राजनीतिक प्रक्रिया का मसला राजनीतिक सिद्धांत के दायरे में आता है। राजनीतिक सिद्धांत अपने अनुकूल सबसे उपयुक्त रूप–रेखा व तंत्र निर्धारित करता है। हिन्दोस्तान में आधुनिक पूंजीवादी राजनीतिक सत्ता की उत्पत्ति जेम्स प्रथम के शाही दिव्य अधिकार के सिद्धांत में है। आधुनिक श्रमजीवी राजनीतिक सत्ता की उत्पत्ति कार्ल मार्क्स के राजनीतिक सिद्धांत में है, जिसमें श्रमजीवी वर्ग को पूंजीपतियों की कब्र खोदने वाले की भूमिका नियुक्त की गई है। केवल राजनीतिक सिद्धांत ही इस बात को समझा सकता है कि राजनीतिक सत्ता का हर रूप निश्चित वर्गों के निश्चित मानवों की इच्छाशक्ति का प्रत्यक्षीकरण ही है, जिसे राजनीतिक संरचना, बुनियादी कानून और समूची राजनीतिक प्रक्रिया में जाहिर किया जाता है।

पूंजीवादी राजनीतिक सत्ता

रूसी संघ के राष्ट्रपति बोरिस येल्तसिन का हाल का आचरण राजनीतिक सत्ता के असली चेहरे की झांकी दिखाता है, उसमें सत्ता के प्यासे व्यक्तियों के समूह बतौर राजनीतिक पार्टियों की भूमिका और उसे वैधता प्रदान करने वाले तंत्र बतौर राजनीतिक प्रक्रिया को स्पष्ट करता है। येल्तसिन ने एक ऐसा संविधान व राजनीतिक प्रक्रिया स्थापित की है, जो कुछ खास लोगों की इच्छा को प्रकट करता है हालांकि एक जनतांत्रिक सत्ता की दिखावट दिखाई जाती है। इस इच्छा शक्ति का मुख्य साधन रूसी सेना है जो

उस वक्त साफ जाहिर हुआ था जब येल्तसिन ने इस साल अक्टूबर के शुरू में जन प्रतिनिधियों की कांग्रेस के खिलाफ़ सेना इस्तेमाल की थी। अब मुख्य राजनीतिक ढांचा जिसमें राजनीतिक प्रक्रिया शामिल है, स्थापित कर दिया गया है और येल्तसिन को एक जनतंत्रवादी की तरह पेश किया जा रहा है। अब वह क्लिंटन या नरसिंह राव की तरह का जनतंत्रवादी दिखता है! 12 दिसम्बर, 1993 को येल्तसिन के संविधान के अपनाये जाने के बाद ऐसी प्रतिस्पर्धक पार्टियां भी पैदा हो गयी हैं जिनका मकसद अपने लिये सत्ता हथियाना है।

राजनीतिक सत्ता अपनी शुरुआत में भद्दे व बदसूरत रूप में दिखायी देती है, जैसा कि रूस में अभी अक्टूबर में हुआ और अपनी अंतिम अवस्था में वह अपनी निरंकुशता के औचित्य के रूप में दिखाई देती है।

क्या यह सभी प्रकार की सत्ताओं के बारे में सही है? नहीं, यह खास तरह की सत्ता के बारे में ही सच होता है, जो खास मानवों व उनके समूहों के विचारों पर आधारित होती है। वे ऐसे मानव हैं जो अपने लिये सत्ता चाहते हैं। वे समाज की भलाई, उसकी प्रगति का रास्ता खोलने के लिये सत्ता नहीं चाहते। वे वर्ग समाज और मानव द्वारा मानव का शोषण खत्म नहीं करना चाहते हैं। इस वजह से इन पार्टियों को राजनीतिक नहीं कहा जा सकता है, जैसा कि राजनीतिक शब्द का अर्थ होता है।

यह तथ्य कि राजनीतिक सत्ता पहले अपनी मनमानी के रूप में सामने आती है, इस बात को सिद्ध करता है कि सत्ता मानवों द्वारा बनायी गयी है। उसके लिये जो भी औचित्यकरण दिया जाये, वह एक बिल्कुल अलग बात है। येल्तसिन अपने हुक्मनामा के ज़रिये शासन की यह सफाई देता है कि वह सुधारों के पक्ष में है, यानी

कि वह पूंजीवादी व्यवस्था का पैरवीकार है। येल्तसिन के मुताबिक मौजूदा राजनीतिक प्रक्रिया व संविधान जिस पर वह प्रक्रिया आधारित थी, वह सुधारों के रास्ते में रुकावट थे। यह औचित्यकरण इस बात को नहीं छिपा सकता है कि वह ऐसी सत्ता बना रहा है जिसकी हिफाज़त एक पेशेवर सेना करेगी और जो खास वर्ग के हित में है। इसलिये सभी साम्राज्यवादी व पूंजीवादी ताक़तें येल्तसिन का गुणगान कर रही हैं।

येल्तसिन ने ऐसे राष्ट्रपति का ओहदा बना लिया है जो सर्वोपरि है। उसने ऐसा संविधान स्थापित किया है जिसके मुताबिक चुनी हुयी सभा राष्ट्रपति के अधीन है, उसकी सेवा में है। जब चुनी हुयी सभा उसकी मर्जी का काम नहीं करेगी तो राष्ट्रपति उसको भंग करके दूसरी सभा बनवा सकता है। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रपति का पद ही संप्रभुता सम्पन्न है और बाकी सब कुछ उसके अधीन है। शुरुआत के तौर पर सभी रूसी नागरिकों को उस संविधान की कसम खानी पड़ेगी जो राष्ट्रपति को संप्रभुता प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में, रूसी नागरिकों को अपनी संप्रभुता राष्ट्रपति के सुपुर्द करनी होगी। रूस में बनाई जा रही नयी राजनीतिक सत्ता की यह पहली मांग है।

किस तरह की राजनीतिक पार्टियां होंगी जो इस सत्ता के लिये होड़ लगायेंगी? जाहिर है कि इन पार्टियों का यही किरदार होगा कि वे मजदूर वर्ग व लोगों को सत्ता से वंचित रखेंगी। जब संप्रभुता राष्ट्रपति के हाथ में होगी, तो इस राजनीतिक प्रक्रिया में राजनीतिक पार्टियों की क्या भूमिका होगी? वे या तो सत्ता के लिये होड़ लगाएंगी, और अपने–अपने राष्ट्रपति निर्वाचित करवाने की होड़ लगायेंगी, या फिर वे इस संविधान का तख्तापलट करने व लोगों को सत्ता में लाने के लिये संगठित करेंगी ।

बहुत समय से, तरह–तरह के जनतंत्र और राजनीतिक सिद्धांत चल रहे हैं लेकिन सभी ने किसी न किसी बहाने लोगों को सत्ता से दूर रखा है। 17वीं सदी के मोड़ पर इंग्लैंड के राजा जेम्स प्रथम ने भी इस तरह की सत्ता बनाई थी जिसमें सारी संप्रभुता राजा में बसी थी। उसके शासन काल के बाद, इस तरह की सत्ता पर किसी ने सवाल नहीं उठाये। इसके बजाय यह होड़ लगी कि इस सत्ता को कौन चलायेगा। जेम्स प्रथम ने शाही परमाधिकार की सत्ता को सत्ता के अंतिम रूप के तौर पर स्थापित किया था, और इसे राजाओं के दिव्य अधिकारों के आधार पर उचित ठहराया गया था। इस शाही परमाधिकार को इंग्लैंड की विधियों से अभी तक नहीं हटाया गया है, कनाडा व आस्ट्रेलिया के संविधान में भी यह विभिन्न रूपों में मौजूद है। हिन्दोस्तान के संविधान में भी यह कुछ अलग तरह से मौजूद है। अंतिम विश्लेषण में यह **शाही परमाधिकार** या इसकी बराबरी की कोई और व्यवस्था, यह सुनिश्चित करती है कि जेम्स प्रथम द्वारा स्थापित की गयी राजनीतिक सत्ता का रूप आज भी मौजूद है, हालांकि राजनीतिक प्रक्रिया में कुछ तब्दीलियां की गयी हैं। 17वीं शताब्दी की सत्ता की यह धारणा, और जिस तरह की राजनीतिक प्रक्रिया इसने 18वीं व 19वीं सदी में पैदा की, वह तकरीबन वैसे के वैसे ही आज भी चल रही है, बस फर्क यह है कि सत्ता को शासक पार्टी की कैबिनेट चलाती है, न कि राजा। इस राजनीतिक सत्ता के उभरने के साथ सामंजस्य में सिर्फ वे राजनीतिक पार्टियां ही उभर पायीं जो अपने लिये सत्ता हड़पना चाहती थीं, या और स्पष्टता से देखा जाये तो, सरमायदारों के उस खंड के लिये सत्ता चाहती थीं जिसका वे प्रतिनिधित्व करती थीं। इतिहास में इन पार्टियों ने यही भूमिका अदा की है, हालांकि पूंजीवादी विकास के रोशन दिनों में, उस समय की हालतों ने उनको समाज की प्रगति का रास्ता खोलने के साधन बतौर

विकसित किया था। लेकिन जैसे ही हालात बदले, ये पार्टियां समाज का रास्ता रोकने वाली ताक़त में तब्दील हो गयीं।

जब मजदूर वर्ग परिपक्व हुआ तो पूंजीपति उसकी राजनीतिक पार्टियों पर जरा भी भरोसा नहीं करते थे, लेकिन जब पूंजीपतियों को यकीन हो गया कि इन पार्टियों के नेता भी सत्ता के मोहताज हैं, वे भी ओहदे व झूठी शान के प्यासे हैं, तो पूंजीपति इन पार्टियों पर भरोसा करने लगे। वे सभी पार्टियां जो इस व्यवस्था को नहीं मानती थीं, जैसे कौमिन्टर्न (तीसरी कम्युनिस्ट इंटरनेशनल) की पार्टियां और जो राजनीतिक सत्ता की इस धारणा के खिलाफ़ खड़ी हुयीं, उन्हें किसी न किसी बहाने "कानून की उपयुक्त प्रक्रिया" का शिकार बनाया गया, आज भी बनाया जाता है और उन्हें हमेशा के लिये सत्ता में आने से रोका गया। उनके सदस्यों को रिश्वत खिलाई गयी और उनके बीच संशोधनवादी व मौकापरस्त विचार फैलाये गये, ताकि पूंजीपतियों की सत्ता को बचाया जा सके और मजदूर वर्ग आन्दोलन पर सत्ता की पूंजीवादी धारणाएं थोपी जा सकें।

जेम्स प्रथम द्वारा स्थापित राजनीतिक व्यवस्था आज की आधुनिक शासन व्यवस्था में विकसित हो गई है, जो सबसे अच्छे तरीके से, दो पार्टियों से चलती है, एक सत्ताधारी पार्टी व एक विपक्षी पार्टी। यह व्यवस्था तभी तक ठीक से चल पाती है जब एक ही ताक़तवर वर्ग हो। लेकिन जैसे–जैसे मजदूर वर्ग अपनी तादाद व चेतना में बढ़ता गया, इस सदी के शुरू में यह व्यवस्था पुरानी पड़ने लगी। जैसे–जैसे शाही परमाधिकार पर आधारित सत्ता आम लोगों के हितों के खिलाफ़ होती गयी, वैसे–वैसे राजनीतिक पार्टियों की पैंतरेबाजी बेनकाब होती गयी, और यह स्पष्ट होता गया कि वे अपनी सरकार को सही ठहराने के लिए लोगों को गुमराह करती हैं। पूंजीवाद के अंतिम पड़ाव, साम्राज्यवाद की हालतों में जब पूरी व्यवस्था

मरणासन्न व परजीवी हो गयी है, तो ऐसी राजनीतिक पार्टियां व प्रक्रियायें उभरीं, जो मरणासन्न व परजीवी थीं। वे खुले रूप से पूंजीवादी सत्ता के साथ जुड़ गयीं, लोगों के दुश्मन बन गयीं और खुले आम अपना उल्लू सीधा करने लगीं। उन राजनीतिक धोखा कांडों का जिक्र करने की ज़रूरत नहीं है जो आये दिन हिन्दोस्तान के अलावा इताली, जापान, ब्राज़ील, आर्जेंटीना, वेनेजुएला व अन्य देशों में होते रहते हैं, क्योंकि उन सभी देशों में जहां ऐसी व्यवस्थायें चल रही हैं, ऐसे कांड भी होते रहते हैं और जब उदारवादी जनतंत्र से पूंजीपतियों का उल्लू सीधा नहीं होता तो वे फासीवाद व सैनिक शासन पर भी उतर आते हैं।

सरमायदारों के लिए किसी राजनीतिक पार्टी की उपयोगिता इसी बात से निर्धारित होती है कि वह जनमत को कितना गुमराह कर सकती है। एक राजनीतिक पार्टी या नेता जो मौजूदा स्थिति के प्रति वफादार है, अपनी वफादारी को लोगों से छुपा सकता है और जनमत को घुमा–फिरा सकता है, वही सरमायदारों के लिये सबसे उपयुक्त होता है।

इसी वजह से ये पार्टियां व नेता इतने बदनाम हो गये हैं।

श्रमजीवी राजनीतिक सत्ता

सोवियत संघ की हुकूमत पहली मिसाल थी, जब हुकूमत मेहनतकश लोगों के हाथ में चली गयी। इस बात को 1936 के बुनियादी कानून में सुनिश्चित किया गया। लेकिन इस बुनियादी कानून से जनतंत्र का रूप नहीं बदला। मेहनतकश लोगों ने इसमें निर्णायक भूमिका अदा की लेकिन फिर भी यह प्रतिनिधित्ववादी जनतंत्र ही था और इसमें मेहनतकश लोग खुद अपना शासन नहीं कर रहे थे।

1950 के दशक में क्रुश्चेव ने घोषणा कर दी कि सोवियत संघ में वर्ग नहीं है। इस बात को उसने नजर अंदाज कर दिया कि वर्ग संघर्ष ही समाज की गति का आधार है। क्रुश्चेव इस पेचीदगी को नहीं सुलझा पाया कि जहां एक तरफ मजदूर वर्ग को अभी भी अपनी राजनीतिक पार्टी की ज़रूरत है, वहीं इसका मकसद होना चाहिये कि लोगों को सत्ता में लाया जाये ताकि वे खुद अपने लिये हुकूमत चला सकें। नये कदम लेने के बजाय, वह अटकलें लगाने लगा और **"सभी लोगों की पार्टी"** व **"सभी लोगों के राज्य"** की धारणाओं को लाया। यह उसी तरह की धारणा थी जिसके ज़रिये राजनीतिक मामलों की असलियत छिपायी जाती है। राजनीतिक सिद्धांत में योगदान देने के बजाय हुकूमत मेहनतकश लोगों से उदासीन होती गयी। नेताओं का एक नया तबका उभरा, जिससे समाज में फिर से वर्गीकरण, विशेषाधिकार व सत्ता के आधार पर विभाजन उत्पन्न हुये। इस तरह समाजवाद के तख्तापलट का रास्ता खुला।

क्रुश्चेव को अपने राजनीतिक सिद्धांत को छुपाने की ज़रूरत थी ताकि वह शोषक वर्गों की पुनर्स्थापना, वर्गीकरण, और सत्ता में विशेषाधिकारों की भूमिका को बढ़ावा दे सकता था। उसने वामपंथी शब्दावली का इस्तेमाल किया और बड़ी–बड़ी बातें कीं, कि वह पूंजीवाद को दफना देगा, ताकि वह लोगों का ध्यान बांट सके और जो वह असल में कर रहा था, उसे छुपा सके।

पिछले दौर में जब 1936 में सोवियत संघ का संविधान अपनाया गया था, तब राजनीतिक सत्ता की परिभाषा पर संघर्ष हुआ था। मिसाल के तौर पर, मजदूर वर्ग की पार्टी किस प्रकार की राजनीतिक पार्टी हो? क्या यह गुटों से भरी पार्टी हो या एकताबद्ध पार्टी हो? राज्य के साथ उसका क्या सम्बन्ध हो? क्या यह नयी राजनीतिक सत्ता का साधन हो या राज्य इस पार्टी का साधन हो? यानी कि पार्टी का

अधिनायकत्व हो या श्रमजीवी वर्ग का अधिनायकत्व। दूसरी पार्टियों, संगठनों इत्यादि से इसका क्या सम्बन्ध हो? मजदूर वर्ग व दूसरे वर्गों के बीच क्या संबंध हो? राजनीतिक सिद्धांत को 1936 के संविधान ने किस तरह सम्पन्न बनाया, यह इस बात से देखा जा सकता है कि इतिहास में पहली बार हुकूमत व विधानसभा के चुनाव के लिये किसी पार्टी को उम्मीदवारों के चयन का हक नहीं दिया गया। आगे के घटनाक्रम में इस कानून को ठीक से समझा नहीं गया और अपने तर्कसंगत अंजाम तक नहीं ले जाया गया। सिर्फ एक पार्टी के अधिनायकत्व की धारणा लाने के बाद ये परिवर्तन बेअसर व निष्क्रिय हो गये।

लेकिन सर्वव्यापी मताधिकार, उम्मीदवारों के चयन व चुनाव का हक, वापस बुलाने का हक, विधान प्रस्तावित करने का हक इत्यादि इस दिशा में अच्छी उपलब्धियां थीं, जिसके आधार पर और प्रगति की जा सकती थी।

किस दिशा में प्रगति करना था, यह तो काफी स्पष्ट कर दिया गया था। यह दिशा थी मजदूर वर्ग की पार्टी की अग्रवर्ती भूमिका को बढ़ाना और प्रशासन में मेहनतकश लोगों की भूमिका को बढ़ाना, ताकि यह मंजिल हासिल की जा सके कि लोग खुद अपना शासन कर सकें। जहां तक सोवियत संघ के बुनियादी कानून का सवाल है, 1936 की निर्णायक उपलब्धि के बाद लोगों को सत्ता में लाने की दिशा में कोई प्रगति नहीं हुयी। जो हुआ, खास तौर पर क्रुश्चेव के सत्ता में आने के बाद, वह यही था कि कम्युनिस्ट पार्टी हुकूमत के कार्यकारी काम में घुसती गयी, और यह प्रक्रिया अपनी मंजिल पर तब पहुंची जब सोवियत संघ का खात्मा हुआ व येल्तसिन के संविधान मसौदे को अपनाया गया, जिसमें जेम्स प्रथम के राजनीतिक सिद्धांत को फिर से लागू किया गया। ताज को पूरी सत्ता देने के

बजाय राष्ट्रपति के हाथ में सभी ताक़तें दे दी गयी हैं। येल्तसिन ने जो स्थापित किया, असलियत में वह पिछले 40 साल से चल रही थी जहां सारी सत्ता पार्टी व उसके पोलिटब्यूरो के हाथ में थी। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के डिक्टेटर होने के बजाय, अब यह ताक़त रूसी संघ के राष्ट्रपति, जो अब डिक्टेटर बन गया है, के हाथ में चली गयी है।

1936 में सोवियत संघ का संविधान प्रतिनिधित्ववादी जनतंत्र में एक बहुत बड़ा कदम था। लेकिन सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) वह छलांग नहीं लगा पाई जिसके ज़रिये वह श्रमजीवी राज्य की अगुआ पार्टी होने से आगे बढ़कर, ऐसी पार्टी बन पाती जो लोगों को खुद शासन करने में नेतृत्व देती। दूसरे शब्दों में राजनीतिक पार्टी और प्रक्रिया का एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तन नहीं हुआ, यानी राजनीतिक सत्ता का एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तन नहीं हुआ।

जहां पूंजीपतियों का अधिनायकत्व होता है वहां एक किस्म की पार्टियों की ज़रूरत होती है और श्रमजीवी अधिनायकत्व में दूसरी तरह की पार्टियों की। लेकिन इनमें एक फर्क है।

पूंजीवादी जनतंत्र (पूंजीपतियों का अधिनायकत्व) में पार्टी को यह सुनिश्चित करना होता है कि मजदूर वर्ग उससे सत्ता न छीन ले, और ऐसे कानून व नीतियां बनानी होती हैं जिससे मजदूर वर्ग से अपने हितों की हिफ़ाजत करने की काबिलियत को छीना जा सके। श्रमजीवी जनतंत्र (श्रमजीवी अधिनायकत्व) में एक राजनीतिक पार्टी को यह सुनिश्चित करना होता है कि शोषक वर्गों को वर्ग बतौर खत्म किया जाये और राजनीतिक सत्ता को मेहनतकश लोगों के हाथ में सौंपा जाये, ताकि नये समाज के सृजन का रास्ता खुल सके।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) ऐसी पार्टी थी जो मौजूदा शोषक वर्गों का उन्मूलन तो कर सकती थी, लेकिन वह सत्ता को लोगों के हाथ में नहीं सौंप पायी। वस्तुगत गतिविधियों ने इस समस्या को सामने खड़ा किया था। जिस भी वजह से इस समस्या को हल नहीं किया गया हो, इससे आगे बढ़ने के बजाये, पतन हुआ। समय के चलते, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) खुद ही पूरी तरह पतित हो गयी और वह साधन बन गयी जिसके ज़रिये श्रमजीवी अधिनायकत्व पूंजीपतियों के अधिनायकत्व में तब्दील हो गया।

राजनीतिक पार्टी की आधुनिक परिभाषा

संप्रभुता कहां निहित होनी चाहिये? अगर राजनीतिक प्रक्रिया से शाही परमाधिकार की भूमिका, चाहे वह किसी भी रूप में हो, को निकाल दिया जाये तो संप्रभुता कहां होगी? क्या हम फिर कह सकते हैं कि संप्रभुता लोगों के हाथों में होगी और चुनावों के ज़रिये चुने गये प्रतिनिधि को संप्रभुता सौंपकर लोग अपनी संप्रभुता का इस्तेमाल कर सकते हैं? हिन्दोस्तान और दुनिया के कई देशों में ऐसा पहले से होता आ रहा है। जब तक लोग सीधे तौर पर कानून बनाने और सरकार चलाने में हिस्सा नहीं लेंगे, यानी कि जब तक वे सत्ता में नहीं होंगे, तब तक कोई बुनियादी या गहरी तब्दीलियां नहीं हो सकती। स्थिति को बदलने के लिये वर्तमान हालातों में क्या करने की ज़रूरत है? संप्रभुता कहां निहित हो और कैसे उसे इस्तेमाल किया जाये? क्या यह शासक पार्टी को सौंप दी जाये, जैसा कि अभी हो रहा है? यह तर्क देना फिजूल होगा कि इन सवालों का जवाब इस बात पर निर्भर करेगा कि वह राजनीतिक हस्ती कितनी बड़ी है या और उसकी जनसंख्या कितनी एक समान है। क्या हम कह सकते हैं कि एक समान लोगों के छोटे राज्य

संप्रभुता को अपने हाथ में रख सकते हैं, जबकि हिन्दोस्तान जैसे बड़े राज्यों में, जहां अलग–अलग तरह के लोग रहते हैं, वहां यह असंभव हो जाता है? मसला सार का है न कि बाहरी रूप का। अगर अधिकांश लोगों के हितों की सेवा करनी है तो संप्रभुता को लोगों के हाथों में होना होगा। अगर पूरी आबादी के हितों को पूरा करना है तो संप्रभुता सभी लोगों के हाथों में होनी होगी। लोगों को सत्ता में लाये बगैर और इसके लिये काम करने वाली राजनीतिक पार्टियों के बगैर, यह हासिल नहीं हो सकता है।

चाहे कोई देश बड़ा है या छोटा, दुनिया के सभी मानवों के कुछ हक हैं, इस आधार पर कि वे मानव हैं। एक राजनीतिक पार्टी की आधुनिक परिभाषा यह होगी कि वह इस असूल को अपने संविधान में सबसे अहम असूल बतौर माने। इसके लिये उस पार्टी के संविधान में यह प्रावधान होना चाहिये कि मानव अधिकारों का किसी भी हालातों में उल्लंघन नहीं किया जा सकता है।

फिर सवाल यह उठता है कि ये बुनियादी मानव अधिकार क्या हैं? एक आधुनिक राजनीतिक पार्टी को उनकी परिभाषा स्पष्ट रूप से देनी होगी। यहां हम इन अधिकारों पर बहस नहीं कर रहे हैं लेकिन इस बात पर गौर करना होगा, कि अगर मानव अधिकारों के बुनियादी असूल को मूल मार्गदर्शक माना जाये तो बहुत से ऐसे ठोस हित उभरेंगे, जो परस्पर–विरोधी नज़र आयेंगे। एक व्यक्ति का हित समूह के हित के खिलाफ़ नज़र आ सकता है, जबकि व्यक्तिगत या सामूहिक हित आम समाज के हित के खिलाफ़ दिख सकते हैं। अगर एक राजनीतिक पार्टी वाकई लोगों की संप्रभुता के प्रति निष्ठावान है, तो उसमें यह काबलियत होनी होगी कि वह इन हितों में सामंजस्य ला सके। फिर राजनीतिक सत्ता का एक नया रूप बनेगा, ऐसी सत्ता जो समाज के सभी लोगों के हाथ में

है। ऐसी राजनीतिक सत्ता की रचना करना आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत के सामने सबसे बड़ी चुनौती है।

अगर यह माना जाये, जैसा कि आधुनिक संसदीय या राष्ट्रपति प्रणाली में होता है, कि किसी पार्टी का मकसद सत्ता में आना है और लोगों के नाम पर हुकूमत करना है, तो ऐसी पार्टी ऐसे कानून कभी नहीं बना सकती, जो मानव अधिकारों को सुनिश्चित कर सके और व्यक्तिगत, सामूहिक व आम हितों का सामंजस्य कर सके।

लेकिन अगर एक राजनीतिक पार्टी लोगों को सत्ता में लाने में अगुआई दे सके, और इसे सुनिश्चित करने के लिये आधुनिक राजनीतिक प्रक्रिया में नवनिर्माण करे, तो लोग खुद ऐसे कानून बना डालेंगे जो उन्हें सत्ता चलाने में सक्षम बनायेंगे। निष्कर्ष के तौर पर, एक आधुनिक राजनीतिक पार्टी ऐसी होनी चाहिये जो लोगों को नेतृत्व दे सके ताकि लोग खुद शासन करें और संप्रभुता का प्रयोग करें। ऐसी राजनीतिक पार्टी की आधुनिक परिभाषा में अपने लिये सत्ता हड़पने का मकसद नहीं होगा, बल्कि लोगों के लिये नयी राजनीतिक सत्ता की रचना करने का मकसद होगा। एक बार वह नयी राजनीतिक सत्ता स्थापित हो जाती है, तो फिर वह राजनीतिक पार्टी अपने लिये राजनीतिक सत्ता नहीं तलाशेगी, क्योंकि उस नई सत्ता के तंत्र स्वयं ही लोगों को सत्ता में लायेंगे। बेशक राजनीतिक पार्टियों की फिर भी एक निर्णायक भूमिका होगी, यह सुनिश्चित करने में कि लोग सत्ता में रहें, और समाज का एक नज़रिया पेश करने में।

ठोस रूप में इसका यह मतलब है कि हालांकि हिन्दोस्तान के कम्युनिस्टों को चुनाव में भाग लेना चाहिये ताकि वे अपने कार्यक्रम

को आगे बढ़ा सकें, उन्हें सत्ता में आने के लिये नहीं लड़ना चाहिये। संघर्ष को बढ़ाने के लिये संसदीय मोर्चे को इस्तेमाल करना चाहिये लेकिन यह काम का एकमात्र मोर्चा नहीं है, सबसे महत्वपूर्ण मोर्चा भी नहीं है। एक कम्युनिस्ट पार्टी को, श्रमजीवी वर्ग व लोगों को राजनीतिक सत्ता के स्वरूप के बारे में और लोगों को सत्ता में लाने के लिये किन परिवर्तनों की ज़रूरत है, इसके बारे में शिक्षित करना होगा। लोगों के सत्ता में होने का क्या मतलब है, इसका बयान हिन्दोस्तान के मौजूदा संकट, उसके संसदीय प्रणाली के संकट के संदर्भ में करना होगा। हिन्दोस्तानी लोगों को एक पक्ष–निरपेक्ष आधार पर संगठित करना होगा ताकि वे सरमायदारों की सत्ता का मुकाबला कर सकें। लोगों के ऐसे संगठनों को नयी राजनीतिक सत्ता को बनाने के लिये, संघर्ष के हर मोर्चे में भाग लेना होगा और जब उपयुक्त हो तो उन्हें चुनावों में भी भाग लेना होगा। मौजूदा सत्ता के रखवाले होने के बजाये, आधुनिक राजनीतिक पार्टी को एक वाकई आधुनिक राजनीतिक सत्ता के सृजन की अगुआ ताक़त होना होगा, एक ऐसी सत्ता जो समाज के सभी लोगों व अंतर्राष्ट्रीय तौर पर लोगों की इच्छा को जाहिर कर सके। आधुनिक राजनीतिक पार्टी को एक ऐसे समाज को संगठित करने का काम प्राथमिक तौर पर उठाना होगा, जो अपने सदस्यों के दावों को पूरा कर सके। वह किसी पूंजीवादी पार्टी की तरह लोगों को सत्ता से दूर रखने का मकसद नहीं रख सकती है, जैसे संत पीटर स्वर्ग के दरवाज़े पर पहरा देते हैं, या जैसे चित्रगुप्त हिसाब रखता है कि कौन स्वर्ग में आ सकता है और किसे यमराज के हवाले किया जाये! ऐसी पार्टी श्रमजीवी वर्ग की ही हो सकती है, एक हिरावल पार्टी जो सारे लोगों का नेतृत्व करती है, एक ऐसे नये समाज के सृजन में, जिसमें लोगों के पास मानव होने के आधार पर अधिकार होंगे और जहां व्यक्तिगत, सामूहिक और समाज के आम हितों में सामंजस्य होगा।

मजदूर वर्ग के वर्ग स्वरूप वाली पार्टी अपने लिये, या फिर संकीर्ण तौर पर मजदूर वर्ग के लिये सत्ता स्थापित नहीं कर सकती है। उसको ऐसी सत्ता स्थापित करनी होगी जो इंसान द्वारा इंसान के शोषण के सारे आधार को ही नष्ट कर दे। ऐसी सत्ता को किसी राजनीतिक पार्टी द्वारा नहीं चलाया जाना चाहिये बल्कि उन सभी लोगों द्वारा, जिन्हें वर्ग समाज को खत्म करने की रुचि है।

कम्युनिस्टों को लोगों को सत्ता में लाने के मकसद से राजनीतिक मैदान में उतरना पड़ेगा। लोगों को सत्ता में लाने के लिये उन्हें राजनीतिक प्रक्रिया के जनतांत्रिक नवनिर्माण के लिये बुलावा देना होगा। इस जनतांत्रिक नवनिर्माण में मुख्य मुद्दा सिर्फ नुमाइंदों को वापस बुलाने का हक या विधान प्रक्रिया को शुरू करने का हक नहीं है बल्कि चुनने और चुने जाने के हक को सुनिश्चित करने का है। अभी हिन्दोस्तान में कोई समर्थक कानून नहीं है जो इस हक को एक ख्याल से एक हकीक़त में तब्दील कर सके। ऐसी राजनीतिक पार्टी लाजिमी तौर पर ऐसी व्यवस्था के लिये संघर्ष करेगी जहां लोग, मोहल्लों व कारखानों के आधार पर संगठित होकर उम्मीदवारों का चयन करेंगे और फिर उन्हें चुनाव में खड़ा करेंगे।

चुने गये लोग सरकार का गठन करेंगे और लोग नुमाइंदों को वापस बुलाने का और विधान प्रक्रिया शुरू करने का और प्रशासन में भाग लेने का हक अपने पास रखेंगे। ऐसी राजनीतिक प्रक्रिया पर लोग हावी होंगे, न कि पार्टियां। राजनीतिक प्रक्रिया पर पार्टियों के दबदबे को खत्म करने की जब हम बात करते हैं तो इसका मतलब यह नहीं है कि हम पार्टियों को खत्म करने की बात कर रहे हैं। इसके विपरीत, राजनीतिक पार्टियां तो ऐसी व्यवस्था के चलने के लिये ज़रूरी होंगी क्योंकि राजनीतिक पार्टियां ही निश्चित वर्ग हितों के लिये संघर्ष करती हैं और उनके लिये लोगों को संगठित करती हैं।

पार्टियों को अपने सदस्यों के सामने खरा उतरना पड़ेगा, न कि किसी नेता या पैसे या असर वाले आदमी के सामने, यानी समाज के विशेषाधिकार वाले तबके के सामने। राजनीतिक पार्टियों के हित में होगा कि वे राजनीतिक प्रक्रिया के जनतांत्रिक नवनिर्माण के लिये काम करें, क्योंकि लोगों को तभी असली सत्ता मिलेगी और विशेषाधिकार वाली पार्टियों के आधार को काटा जा सकेगा। ऐसे परिवर्तन लाने में न सिर्फ मजदूर वर्ग की राजनीतिक पार्टी को दिलचस्पी होगी बल्कि और भी ऐसे लोग होंगे जो ऐसी सत्ता के लिये लड़ेंगे, जो सच्चे जनतंत्र के लिये संघर्ष कर रहे हैं।

सभी विशेषाधिकारों को खत्म करना – आधुनिक जनतंत्र की मांग

आधुनिक जनतंत्र के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वह अपने लिये ऐसा सार बनाये जो न केवल उन पुराने रूपों से अलग है, जिनमें जनतंत्र पहले प्रकट हुआ था, बल्कि उनसे बिल्कुल विपरीत है। प्राचीन यूनान व रोम के विचारकों व सिद्धांतकारों और मध्यकालीनता के प्रतिनिधियों – खास तौर पर इंग्लैंड में जेम्स प्रथम – ने जिस तरह सत्ता की धारणा की थी, उसमें खुले रूप से यह बात थी कि आम लोगों को वंचित रखा जाये, न सिर्फ प्रशासन करने से, बल्कि सत्ता के स्वरूप व बुनियादी विधान का निर्धारण करने से भी।

जब मताधिकार को विस्तृत करके सर्वव्यापी बनाया गया, तब भी लोगों को चुनने व चुने जाने की शक्ति नहीं मिली, क्योंकि सत्ता का स्वभाव नहीं बदला था, उसके निर्धारण में विशेषाधिकार की भूमिका नहीं बदली थी। हिन्दोस्तान का संविधान हिन्दोस्तानियों के चुनने व चुने जाने के हक को मानता है, लेकिन ऐसा कोई समर्थक विधान नहीं है जो उसे लागू कर सके।

मजदूरों व किसानों के नुमाइंदों और शोषित व दलित लोगों के किसी भी खंड की नुमाइंदगी करने वाली राजनीतिक पार्टियों के खिलाफ़ इस चुनाव व्यवस्था में भेदभाव निहित है, क्योंकि दौलत का बहुत असमान वितरण है। इसके अलावा चुनावी कानून आज़ाद उम्मीदवारों और मान्यता प्राप्त राजनीतिक पार्टियों के उम्मीदवारों के बीच भेदभाव करते हैं। पांच तथाकथित राष्ट्रीय राजनीतिक पार्टियों, कांग्रेस (इ), भाजपा, जनता दल, भाकपा व माकपा और राज्य स्तर पर "मान्यता प्राप्त राजकीय पार्टियों" को रेडियो व दूरदर्शन पर समय दिया जाता है, जबकि दूसरों को इससे वंचित रखा जाता है। चुनावी कानून तथा अन्य कानून अमीर व असरदार लोगों को अपना रोब जमाने में और मदद करते हैं।

जब इंग्लैंड में पुराना जनतंत्र उभरा था तो उसके सामने एक मुख्य समस्या थी सिंहासन के विशेषाधिकार से लड़ना। कुल मिलाकर, सामंती विशेषाधिकार के खिलाफ़ संघर्ष जनतंत्र का मुख्य मुद्दा था। जो इस विशेषाधिकार के खिलाफ़ लड़ रहे थे, वे अपने वर्ग के हित के लिये लड़ रहे थे, वे सामंती विशेषाधिकार की जगह पूंजीवादी विशेषाधिकार लाना चाहते थे। वे सभी विशेषाधिकारों को खत्म नहीं करना चाहते थे। उन्होंने राजा को शाही परमाधिकार से वंचित कर दिया और उसे खुद हासिल कर लिया, आम जनता को नहीं दिया। जबकि यह अधिकार वास्तव में आम जनता का होना चाहिये। उन्होंने शाही परमाधिकार को खत्म करके नये किस्म की सत्ता बनाने की कोशिश नहीं की। सामंती विशेषाधिकार से लड़ते हुए, पूंजीवादी जनतंत्र ने उन्हीं पहलुओं को बढ़ाया जिनको वे स्थापित करना चाहते थे – नागरिक अधिकार। राजनीतिक अधिकारों की बराबरता पर वे कुछ नहीं बोले, जबकि वह बहुत महत्वपूर्ण मसला है। जब संकट गहरा होता है तो नागरिक अधिकारों का भी उल्लंघन किया जाता है, जैसे हिन्दोस्तान और

दुनिया के दूसरे देशों में राजकीय दमन व काले कानूनों से जाहिर होता है।

सारांश में, राजनीतिक सिद्धांत को दो महत्वपूर्ण समस्याओं को हल करना होगा, जो सामंती व पूंजीवादी विशेषाधिकार के दौर से चलती आ रही हैं, जिनका अभी तक हल नहीं हुआ है।

पहली समस्या है सत्ता के सार की। कौन शासन करे और किसके हितों में? आधुनिक राजनीतिक पार्टी की परिभाषा में इस सवाल को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है। दूसरा मसला है उस राजनीतिक तंत्र का, जो सुनिश्चित करे कि लोग शासन कर पायें और शासन उनकी सेवा में ही हो। राजनीतिक सत्ता व उसके सार, किसके हित में सत्ता चलाई जाती है, इन मसलों से राजनीतिक तंत्र या प्रक्रिया उदासीन नहीं हो सकती।

आधुनिक परिभाषाओं को इस मसले पर पिछली सारी धुंध को हटाना होगा, और राजनीतिक सत्ता से विशेषाधिकार की भूमिका को हटाने की ऐतिहासिक समस्या को हल करना होगा।

राजनीतिक पार्टियां और लोगों को सत्ता में लाना

स्वाभाविक तौर पर सवाल उठता है कि इन हालातों में क्या समाधान हो सकता है? समाधान तो यही है कि ऐसे किसी तंत्र की रचना की जाये जिसके ज़रिये लोग सबसे ज्यादा विशेषाधिकार वालों की सत्ता को चुनौती दे सकें और कार्यकारिणी की ताक़त को लोगों को सत्ता में लाने की ज़रूरत को पूरा करने को बाध्य करते हुये, खुद सत्ता में आ सकें। नयी राजनीतिक सत्ता राजनीतिक

प्रक्रिया को भी तब्दील करेगी ताकि वह अपने आप को तब तक चला सके जब तक वर्गीय समाज के विलीन होने के साथ–साथ राज्य सत्ता भी विलीन न हो जाये।

सिर्फ पार्टियों के गठबंधन से ही काम नहीं चल पायेगा। ज़रूरत है एक संघ की, लोगों के हाथों में एक तंत्र की, जो उन्हें सशक्त बना सके। सैद्धांतिक व अमली तौर पर इस तरह के तंत्र को विकसित करने का काम कम्युनिस्टों को करना होगा।

लोगों को खुद सत्ता में आना है, इस धारणा की ठोस अभिव्यक्ति होनी होगी, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि इस कार्य को उठाने वाली राजनीतिक पार्टी का खास वर्ग चरित्र होना महत्वपूर्ण नहीं है। उसे मजदूर वर्ग की राजनीतिक पार्टी होनी होगी। कम्युनिस्ट पार्टी के वर्ग चरित्र को बदलने का कोई सवाल नहीं है। उसे खुले रूप से ऐलान करना चाहिये कि वह श्रमजीवी वर्ग की राजनीतिक पार्टी है और उसी तरह उसे अपना काम करना चाहिये।

मौजूदा राजनीतिक संकट के केन्द्र में लोगों को सत्ता में लाने की ज़रूरत है। लोगों को सत्ता में लाने का मसला एक पक्ष–निरपेक्ष मसला है जिसे सभी राजनीतिक पार्टियों को उठाना चाहिये।

केवल श्रमजीवी वर्ग व उसकी पार्टी में ऐसा विस्तृत नज़रिया और विचारों की दृढ़ता है कि वह इस समस्या को पक्ष–निरपेक्ष ढंग से पेश करे। यह पूरे समाज के सामने एक मसला है क्योंकि मौजूदा प्रक्रिया व संस्थायें बेकार हो गयी हैं। कम्युनिस्ट पार्टी तो ज़रूर एक पक्षपाती पार्टी है, उसकी अपनी विचारधारा व लाइन है, और क्रांति के ज़रिये कम्युनिस्ट समाज बनाने के लिये वह वचनबद्ध है।

फिर लोगों को सत्ता में लाने जैसे महत्वपूर्ण मसले पर क्या ऐसी पार्टी पक्ष–निरपेक्ष रवैया ले सकती है? न केवल यह पक्ष–निरपेक्ष रवैया ले सकती है बल्कि इसको ऐसा रवैया ज़रूर लेना चाहिये। ऐसा क्यों है? राजनीतिक सत्ता के ऊपर लड़ाई पूंजीपति वर्ग व मजदूर वर्ग के बीच है। पूंजीपति वर्ग कभी सत्ता से वंचित होना नहीं मानेगा। पूंजीपति वर्ग लोगों के सत्ता में आने के मसले को अपने हित से ही देखते हैं। उन्हें यह फिक्र नहीं है कि समाज का क्या होगा। उन्हें सिर्फ अपने हितों की फिक्र है।

इस मसले पर वे एक विस्तृत व रोशन नज़रिया नहीं लेते हैं। वे राजनीतिक संकट को लोगों व समाज के हक में नहीं सुलझाना चाहते हैं, और वे यह भ्रम फैला रहे हैं कि संकट को काबू कर लिया जायेगा। वे मौजूदा व्यवस्था को बरकरार रखना चाहते हैं। दूसरी ओर, मजदूर वर्ग को पूंजीपति वर्ग के खिलाफ़ संघर्ष में दांवपेच के लिये गुंजाइश चाहिये। शोषितों के अगुआ बतौर उसके हित में है कि लोगों को सत्ता में लाने के महत्वपूर्ण मसले पर वह पक्ष–निरपेक्ष रहे। यह उसके हित में है कि वह विस्तृत व रोशन नज़रिये का हो।

इस वक्त राजनीतिक सिद्धांत पर जितना भी साहित्य मौजूद है, वह सिर्फ बाहरी रूप पर ध्यान देता है कि सत्ता कैसे बनायी जाती है व इस्तेमाल की जाती है, और इसके सार को नहीं देखता है। वह यह मानकर चलता है कि जहां तक सत्ता के सार का सवाल है, इसमें किसी परिवर्तन की ज़रूरत नहीं है। सत्ता की बुनियाद, हुकूमत की संप्रभुता या पार्टियों की भूमिका पर कोई सवाल नहीं उठाये जाते हैं। जब बाहरी रूप की भी बात की जाती है तो इसी मतलब से, कि इन मौजूदा संस्थाओं को विश्वसनीयता दी जाये। राजनीतिक सिद्धांत को जैसा है वैसा ही मान कर, और उसके मौजूदा बाहरी रूप को मजबूत

करके बहुत से बुद्धिजीवी इस राजनीतिक संकट को बढ़ा रहे हैं। एक विस्तृत व रोशन नज़रिये का मतलब अवश्य ही यह है कि हम मौजूदा वास्तविकता की तहकीकात से शुरू करें। पूरी दुनिया के वर्तमान राजनीतिक तजुर्बे के तथ्यों का विश्लेषण करके ही हम हिन्दोस्तान की राजनीतिक व्यवस्था की बीमारी का इलाज निकाल सकते हैं।

राजनीतिक तहकीकात करने वाले को वर्तमान समय में देखना चाहिये, फिर भूतकाल में, इंग्लैंड की 17वीं सदी से आज तक, बस्तीवाद विरोधी संघर्ष में सत्ता की क्या धारणा थी, मुगल काल और उसके पहले इत्यादि। फिर आज के नज़रिये से हमें हिन्दोस्तान की सत्ता व राजनीति के तजुर्बे, सिद्धांत व अटकलों पर गौर करना होगा। राजनीतिक व्यवस्थाओं के इस अंतर्विरोध से जूझना है जिसके तहत हुकूमत के शासकों के हित में शासन करने के हक़ को हथियारों के बल से बरकरार रखा जाता है, जबकि चुनावों का इस्तेमाल किया जाता है इस नंगी ताक़त को लोगों की नज़रों में और विश्वसनीय बनाने के लिये। जनतंत्र में क्या ऐसा नहीं है कि एक खंड के पास सारे हक़ हैं और दूसरे के पास कोई भी हक नहीं हैं? ऐसा क्यों है कि हिन्दोस्तान जैसे जनतंत्रों में सिर्फ कुछ मुट्ठीभर लोगों के हाथों में संपूर्ण राजनीतिक सत्ता है? क्या मेहनतकश लोगों को जो समाज में बहुसंख्यक हैं, प्रशासन का अधिकार नहीं मिलना चाहिये? क्या उन्हें चुनने व चुने जाने का हक़ नहीं होना चाहिये? हिन्दोस्तानी कम्युनिस्टों के सामने ये मसले हैं। कम्युनिस्ट क्यों यह मांग न उठायें कि हिन्दोस्तानी जनतंत्र को अपनी तर्कसंगत मंजिल तक ले जाया जाये, लोगों को सत्ता में लाकर?

कोई वजह नहीं है कि इस वक्त गहन जनतांत्रिक सुधार न किये जायें। अगर बस्तीवाद के दौर में इतनी बंदिशों में एक संविधान

सभा बन सकती थी, तो अब एक नयी संविधान सभा क्यों नहीं बनायी जा सकती है? बेशक हम इस समय इसे एक मांग बतौर नहीं उठा रहे हैं लेकिन सवाल ज़रूर उठता है कि पिछले 45 साल के तजुर्बे पर एक नया संविधान क्यों न बनायी जाये? जबकि संविधान सभा बस्तीवादी हुकूमत के तहत सीमित मताधिकार पर चुनी गयी थी, तो अब तो एक संप्रभु संसद है। राजनीतिक प्रक्रिया के जनतांत्रिक नवनिर्माण व अन्य मसलों से निबटने के लिये वह एक नयी संविधान सभा के चुनाव के लिये आवाज़ क्यों नहीं उठाती है? कोई वजह नहीं है कि सर्वव्यापी मताधिकार के आधार पर एक नयी संविधान सभा न चुनी जाये जो देश के सामने सारी समस्याओं पर विचार–विमर्श कर सके। इनमें से एक अत्यंत महत्वपूर्ण सवाल होगा लोगों को सत्ता में लाने का। ऐसी संविधान सभा के सदस्यों की जिम्मेदारी होगी कि लोगों को सत्ता में लाने के मकसद व राजनीतिक सिद्धांत से मार्ग प्रदर्शित होकर, वे एक नयी राजनीतिक प्रक्रिया बनायें।

1857 में हिन्दोस्तान की आज़ादी के प्रथम युद्ध के दौरान उठे महत्वपूर्ण सवालों में से एक सवाल को इस समय याद करना ज़रूरी है।

बहादुरशाह जफर ने उस समय अपने राजनीतिक सिद्धांत को बयान किया था, जिसके अनुसार जीतने के बाद लोग खुद फैसला करेंगे कि हुकूमत किसकी होगी और किस तरह की व्यवस्था चलेगी। समाज के मामलों को चलाने में लोगों की भूमिका के बारे में इस स्पष्ट बयान से बर्तानवी घबरा गये थे। अपने मामलों को तय करने में लोगों की भूमिका व चेतना तो उस समय की तुलना में आज कहीं ज्यादा हो गई है, और इस दौर में तो यह अपनी चरम सीमा पर पहुंच रही है। समाज के जाति, धर्म व भाषा के आधार पर बंटे

होने के बावजूद एक बढ़ती व स्पष्ट मांग आ रही है कि लोग ही हैं जो संप्रभुता सम्पन्न होने चाहिये, लोग ही बुनियादी कानून को तय करेंगे, वे ही हुकूमत करेंगे, और नयी व्यवस्था की हिफाज़त भी करेंगे। हिन्दोस्तान में बर्तानवी सत्ता के स्थापित होने से लेकर इसके खत्म होने तक और आज़ादी के बाद की अवधि में नई राजनीतिक चेतना वाली जनता के पैदा होने तक, वस्तुगत हालतें इस हद तक परिपक्व हो चुकी हैं कि समाज लोगों को सत्ता में लाने का काम उठाने के काबिल है और यह उठाना लाज़िमी और ज़रूरी भी है।

हिन्दोस्तानी राजनीतिक पार्टियों का सौ साल से भी ज्यादा लंबा इतिहास है। इनमें सबसे पुरानी कांग्रेस पार्टी है, जो 1885 में स्थापित हुयी थी। कम्युनिस्ट आंदोलन का भी 70 साल से ज्यादा लंबा इतिहास है और 1995 के अंत में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी अपनी 70वीं सालगिरह मनायेगी। क्या यह एक बहुत अच्छा समय नहीं होगा, जब इस सवाल पर विचार–विमर्श किया जाये, कि हिन्दोस्तान में किस प्रकार की पार्टी चाहिये, और इस तजुर्बे की समीक्षा की जाये? एक राजनीतिक पार्टी एक वर्ग के मकसद को सबसे एकत्रित रूप में प्रकट करती है। उसकी विचारधारा इस बात को प्रकट करती है कि समाज का भविष्य कैसा होगा। क्या लोगों को खुले रूप से विचार नहीं करना चाहिये कि ऐसी पार्टियों का क्या किया जाये जो लोगों के सत्ता में आने का विरोध करती हैं? इन सवालों को उठाना बहुत ज़रूरी है, बिना पूर्वधारणा के, एक गैर–जज़बाती आधार पर।

निष्कर्ष में हमें गौर करना चाहिये कि बेशक इन मसलों, हिन्दोस्तानी कम्युनिस्टों की एकता की पुनर्स्थापना का सवाल, किस तरह की पार्टी, या लोगों को सत्ता में लाने के सवाल नये अंदाज में उठाये

जा रहे हैं, फिर भी ये मसले उन मसलों से कतई अलग नहीं हैं, जो कार्ल मार्क्स व फ्रेडरिक एंगेल्स के समय से आंदोलन के मुख्य मसले रहे हैं। कम्युनिस्टों को इन सवालों को उठाना होगा, ऐसे मसले बतौर जो मजदूर वर्ग व आम जनता के लिये सबसे ज्यादा प्राथमिकता रखते हों। हमारे सामने ऐतिहासिक महत्व का एक महान कार्य है। आईये हम मार्क्सवाद–लेनिनवाद के झण्डे तले इकट्ठे होकर आगे बढ़ें ताकि क्रांति के ज़रिये हिन्दोस्तानी समाज को समाजवाद की राह पर अग्रसर किया जा सके। आईये, हम हिन्दोस्तानी कम्युनिस्टों की एकता पुनर्स्थापित करने का कार्य उठायें और मजदूर वर्ग की एकताबद्ध अग्रवर्ती पार्टी बनायें, जो कि लोगों को सत्ता में लाने का ज़रिया बनेगी।